REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 15 | ISSUE - 6 | MARCH - 2026

हिन्दी उपन्यासों में पर्यावरणीय चेतना

शिमला रानी
शोधार्थी

डॉ.जसबीर सिंह
शोध निर्देशक, सहायक आचार्य, हिन्दी–विभाग,
चौधरी देवी लाल विश्वविद्यालय, सिरसा (हरियाणा)

शोध आलेख सार

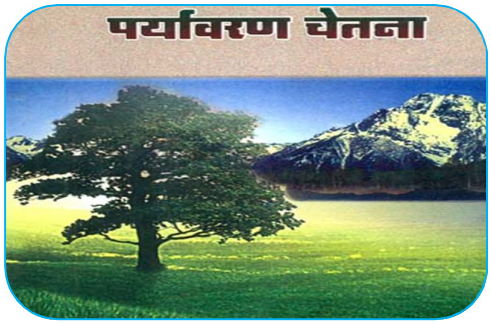

हिन्दी उपन्यासों में पर्यावरणीय चेतना का स्वर विशेष रूप से ग्रामीण जीवन, प्रकृति–मानव संबंध और सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में उभरकर सामने आया है। आधुनिक विकास की अंधी दौड़, औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा प्राकृतिक संसाधनों के दोहन ने जिस प्रकार पर्यावरणीय संकट को जन्म दिया है, उसने उपन्यासकारों को भी गहराई से प्रभावित किया। हिन्दी के अनेक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास संसार में प्रकृति को केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत पात्र के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इस संदर्भ में 'ग्लोबल गाँव का देवता' रणेंद्र', 'मरांग गोड़ा नीलकंठ' हुआ', महुआ मांजी, नागार्जुन का उपन्यास 'बाबा बटेसरनाथ', फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' नवीन जोशी कृत 'दावानल' रमेश दवे कृत 'हरा आकाश', रत्नेश्वर कृत 'एक लड़की पानी पानी' तथा एस. आर. हरनोट का 'नदी रंग जैसी लड़की' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासों में पर्यावरणीय चेतना विविध रूपों में अभिव्यक्त हुई है।

मूल शब्द :–पर्यावरण, पर्यावरणीय चेतना, प्रोद्योगिकी, प्रदूषण, आदिवासी, नगरीकरण, औधोगिकरण.

प्रस्तावना

प्रकृति ही मानव का पर्यावरण और यही उसके ससाधनों का भण्डार है। आज का मानव प्रकृति की गोद मे पलकर भी अपनी स्वयं की अज्ञानता के कारण तथा वैज्ञानिक व तकनीकी जानकारी के अहंवश, पर्यावरणीय ससाधनों का क्रूरता के साथ दोहन करने मे लिप्त है । अति उपभोगी सभ्यता में औद्योगिक उत्पादन प्राकृतिक संसाधनों और ऊर्जा के भण्डारों पर ही निर्भर हैं और यह दोनों ही निश्चित रूप मे उदारता व त्वरित गति से उपयोग में लाये जा रहें हैं व क्षीण हो रहे हैं। इस प्रक्रिया में ससाधनों द्वारा पोषित जीव–तन्त्र संकीर्ण, दूषित तथा विषाक्त होता जा रहा है। आज विज्ञान ने मानव को एक चौराहे पर ला खड़ा किया है जिसके दो विकल्प हो सकते है। प्रथम विकल्प विवेक, मितव्ययता और नैतिकता का लम्बा मार्ग अथवा दूसरा विकल्प–पर्यावरण विनाशक विलासमयी उपभोगमूलक संस्कृति का मार्ग? हमारे वेद, पुराण, उपनिषद् तथा अन्य शास्त्रों में धरती को माता कहकर सम्बोधित किया है और प्राकृतिक शक्तियों को वन्दनीय माना गया है। यह भाव केवल इसलिए अभिव्यक्त किया गया है कि धरती माता हमारी व सम्पूर्ण प्राकृतिक शक्तियों, की जननी व पोषक है । पृथ्वी तथा प्राकृतिक शक्तियों के बीच संतुलन पर ही मानव का अस्तित्व निर्भर है। यदि प्रकृति का संतुलन गड़बड़ा जाये तो उसका अस्तित्व ही काल ग्रसित हो जायेगा ।

शोध पत्र के उद्देश्य :–

1 हिन्दी साहित्य के उन उपन्यासों का विश्लेषण करना जिसमें पर्यावरण के प्रति विशेष आग्रह व चिंता दिखाई गई है।
2. मनुष्य और प्रकृति के बदलते अंतर्संबंधों का विश्लेषण करना।
3. औद्योगिकरण और शहरीकरण से उपजे पारिस्थितिकी विनाश की पड़ताल करना।
4. समाज में पर्यावरण के प्रति जागरूकता लाना।

पर्यावरणीय चेतना : अर्थ और संकल्पना

यह एक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक संकल्पना है। सरल शब्दों में इसका अर्थ है– प्रकृति और मानव के बीच संबंधों की गहरी समझ और पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता। यह केवल जलवायु और पर्यावरण के प्रति सचेत होना नहीं बल्कि एक वैचारिक मनोदशा है। इसमें व्यक्ति स्वयं को प्रकृति का स्वामी न मानकर उसका अभिन्न अंग मानता हैं।

डगलस और हॉलैंड : –''पर्यावरण शब्द का प्रयोग उन सभी बाहरी शक्तियों, प्रभावों और स्थितियों का वर्णन करने के लिए किया जाता है, जो जीवित जीवों के जीवन, प्रकृति, व्यवहार, वृद्धि और विकास को प्रभावित करती है।''[1]

पी. गिसबर्ट:– ''पर्यावरण वह सब कुछ है जो किसी वस्तु को तुरंत घेरे हुए है और उस पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है।''[2]

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि पर्यावरण में विभिन्न प्रकार के शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक और भावनात्मक आदि बल शामिल है। मेरे अनुसार पर्यावरण केवल एक विषय नहीं, बल्कि जीवन की आवश्यकता है। यह हमें जल, वायु, भोजन और प्राकृतिक संसाधन प्रदान करता है। जलवायु को संतुलित रखने के साथ–साथ जैव विविधता की रक्षा करता है। इसके साथ आर्थिक विकास, कृषि और संस्कृति के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

साहित्य समाज का दर्पण है। अतः पर्यावरण की इन समस्याओं को लेकर साहित्य भी अछूता नहीं रह सकता। सन 1990 के बाद बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का आगमन और बाजार की पहुच जंगलों और आदिवासियों तक हुई। जैसे ही हिंदी साहित्य में भी लेखन शुरू हुआ। अब यहाँ सौंदर्य के साथ पर्यावरण और स्थानीय निवासियों की समस्याएं भी थी। तेजी से बढ़ते औद्योगीकरण और जनसँख्या दबाव और संसाधनों की पूर्ति के लिए होने वाले खनन ने जंगलो को काटना शुरू कर दिया। जिससे स्थानीय लोगों को समस्याएं होने लगी। इन समस्याओं को लेकर पिछले दो दशको में कई उपन्यास हमारे सामने आये. जिनमे उपन्यासों की बात करे तो इन उपन्यासों में पारिस्थितिकी संकट और स्थानीय लोगों की समस्याओं को लेकर, भूमंडलीकरण के बाद उत्पन्न हुयी समस्याओं का आदिवासी जीवन पर प्रभाव, खनन से उत्पन्न हुए विकरण के खतरे ग्लोबल वार्मिंग की समस्या, विस्थापन वन अधिकारों का उल्लंघन भूमि अधिग्रहण तथा विदेशी कम्पनियों द्वारा शोषण जैसी समस्याओं पर केन्द्रित है।

आज पर्यावरणीय परिवर्तन जैसी चुनौती से निपटने का हम प्रयास कर रहे है तो हमें प्राचीन दर्शन और शास्त्रों की तरफ भी देखना होगा. भारत में सूर्य को पूरे जीवन का पोषक मन गया है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में ही पर्यावरण चेतना और संरक्षण की बात की गयी है। वैदिक ग्रंथो और बौद्ध ग्रंथ त्रिपटिक में पेड़ काटना निषेध घोषित किया गया है बौद्ध साहित्य त्रिपिटक में भी पर्यावरण से संबन्धित बहुत उपदेश को दिया गया हैं। विनय पिटक, जिसे बौद्ध धर्म की 'आचार संहिता' कहा जाता है, में वातावरण को संतुलित बने रहने के उद्देश्य से पेड़ काटने से विरत् का उपदेश दिया गया। कोई भिक्षु अगर किसी तरह की पेड़ काटता है तो उसे पाराजिक नामक अपराध में रखा जाता है –**''महग्धरुक्खे छिन्नमत्ते पाराजिकं।''**[3]

''भारत राज्य बन रिपोर्ट के अनुसार कुल बन क्षेत्र में 3775 वर्ग किलो मीटर की वृद्धि दर्ज की गयी है। यह पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक सकारात्मक कदम है। वही दूसरी ओर मेघालय, त्रिपुरा, अरुणाचल और मध्य प्रदेश जैसे सघन बन बाले राज्यों के वन आवरण में कमी दर्ज किया जाना निराशापूर्ण हैं। भारत में कुल जंगल वृक्ष आवरण 79.42 मिली हेक्टयर है जोकि कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 24.16 प्रतिशत है। (भारत वन सर्वेक्षण रिपोर्ट 2019)।''[4] संयुक्त राष्ट्र के निर्देशों के अनुसार कुल भौगोलिक क्षेत्र के 33 प्रतिशत भाग पर

वनावरण होना चाहिए। ऐसे में भारत इस आंकड़े में पिछड़ जाता है । अतः वृक्षारोपण के लिए व्यक्तिगत स्तर पर प्रयासों की आवश्यकता है जब तक व्यतिगत स्तर पर प्रयास नहीं किये जाते केवल सरकारों के प्रयासों से इन लक्ष्यों हासिल नहीं किया जा सकता।

'ग्लोबल गाँव का देवता' उपन्यास में रणेंद्र ने विस्तार से बहुराष्ट्रीय कंपनियों के रूप में उभरे नवउपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद की सर्वभक्षी भूख को चित्रित करता है। यह उपन्यास तथाकथित समाज का विकास संबंधी मॉडल को नकारता है। रणेंद्र की यह रचना झारखण्ड राज्य के आदिवासी समाज की भयावह व्यथा को व्यक्त करते हुए आन्तरिक उपनिवेशवाद की ओर हमारा ध्यान खिंचती है। उपन्यास झारखण्ड के साथ साथ अन्य राज्यों के आदिवासी समुदायों की व्यथा को भी बखूबी व्यक्त करता है। रणेंद्र केरल की सी. के. जानू, महाराष्ट्र के कोंकण की सुरेख दलवी आदि की चर्चा करते हुए विमर्श के इस भूगोल को विस्तार देते हुए राष्ट्रीय स्तर पर आदिवासियों के साथ हो रहे अन्याय और सत्ता के खूनी खेल की असलियत को उजागर करते है। रणेंद्र लिखते है कि, ''सामान्य तौर पर आकाशचारी देवताओं को जब अपने आकाश मार्ग से या सेटेलाईट की आँखों से छत्तीसगढ़, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, झारखण्ड आदि राज्यों की खनिज आदिवासी दलित सदन दिखते है तो उन्हें बहुत कोफ्त होती है।''[5]

रणेंद्र,ग्लोबल गाँव का देवता–इस तरह से रणेंद्र बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा तैयार किये जा रहे नवउपनिवेशवाद के मॉडल और पर्यावरण निम्नीकरण के प्रयासों की तीव्र आलोचना करते है।

वहीं दूसरी ओर यूरेनियम विकिरण की समस्या को केंद्र में रखकर लिखा गया उपन्यास **'मरांग गोड़ा नीलकंठ हुआ'** (महुआ मांझी) एक संभावित समस्या को व्यक्त करता है। यह उपन्यास महुआ मांझी के एक पत्रकार के रूप में चार वर्ष के शोध का परिणाम है। यह रचना उन्होंने समाजशास्त्री, मानव शास्त्री और पर्यावरण शोधकर्ता के रूप में लिखी है जो झारखंड की यूरेनियम खदानों से निकलने वाले विकिरण और उनमे रहने वाले स्थानीय लोगों के विस्थापन को व्यक्त करती है।

मांझी लिखती है, ''परमाणु सयंत्रो में एक हजार मेगावाट बिजली पैदा करने से करीब 27 किलो ग्राम रेडिओधर्मी कचरा पैदा होता है और उसे निष्क्रिय होने में हजार साल से भी अधिक समय लग सकता है। यह एक विडम्बना है, कि अधिकतर यूरेनियम खदानें परमाणु रिएक्टर या परमाणु कचरा फेंके जाने वाले टेलिंग डैम आदिवासी इलाकों में ही होते है।''[6] आदिवासियों की समस्या सिर्फ भारत तक ही सीमित नहीं है पूरी दुनिया में देखा जाये तो आदिवासी किसी न किसी रूप में पीड़ित या शोषित किये जा रहे है। महुआ माजी का उपन्यास 'मरांग गोड़ा नीलकंठ हुआ' वस्तुतः जमशेदपुर से 30 किलो मीटर दूर स्थित जादूगोंडा नामक वह कस्बा है जहाँ 1967 में शुरू हुए यूरेनियम खनन से आस पास में 15 गांवों के लोग विकिरण से प्रभावित हुए लेखिका कहती है कि जो जमीन यूरोनियम को पीकर नीलकंठ हुई वहीं दुनिया भर को रोशनी प्रदान करती है।

'बाबा बटेसरनाथ' में नागार्जुन ने बरगद के वृक्ष को मानवीय रूप में चित्रित किया है। उसके जन्म से लेकर भूकंप के कारण टेढ़ा हो जाने तक की कथा संवेदनात्मक ढंग से प्रस्तुत है। इस वृक्ष को पुत्र की भाँति पाला गया था और वह गाँव का आकर्षण केंद्र बन गया। सुख–दुःख, बीमारी या संकट की हर घड़ी में लोग उसके पास जाकर अपने मन की व्यथा कहते थे, जिससे प्रकृति और मानव के गहरे आत्मीय संबंध का चित्र उभरता है। ''विपत्ति का पहाड़ जिसकी गरदन तोड़ रहा होता, वह बेचारा भी यहाँ आता और दृढ़ता के सबक लेता। प्रेमी आता, प्रेमिका आती। रात के अंधेरे में चोर आया करते, रूपयों की उमस से परेशान कंजूस, सास की खुराफातों से परेशान बहुएँ, गणित के सवालों से परेशान स्कूली लड़के.....प्रायश्चित के पचड़े में पड़कर धर्मशास्त्री, पंडित से डरा हुआ अछूत, गार्जियन की निगरानी से तंग आया हुआ नटखट छोकरा, कौन नहीं आता बटेश्वर बाबा के पास और कौन नहीं यहाँ आकर अपने को ताजा महसूस करता।''[7]

मैला आँचल में फणीश्वरनाथ रेणु ने कमला नदी को अत्यंत पूजनीय और जीवनदायिनी रूप में चित्रित किया है। यह नदी केवल प्राकृतिक धारा नहीं, बल्कि ग्रामवासियों की सहयोगिनी है। सम और विषम दोनों परिस्थितियों में वह लोगों की सहायक बनती है। गृहपति के एक आह्वान पर आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराना उसके मातृवत् स्नेह और मानव–प्रकृति के आत्मीय संबंध को प्रकट करता है।'गाँव में किसी के यहाँ शादी–ब्याह या श्राद्ध का भोज हो, गृहपति स्नान करके, गले में कपड़े का खूँट डालकर, कमला मैया को पान सुपारी से निमंत्रित करता था। इसके बाद पानी में हिलोरे उठने लगती थीं, ठीक जैसे नील मथा जा रहा हो। फिर किनारे पर चाँदी के थालों, कटोरों, गिलासों का ढेर लग जाता था। गृहपति सभी बर्तनों को गिनकर ले जाता था और भोज समाप्त होते ही कमला मैया को लौटा आता था।''[8]

आज मानव द्वारा प्रकृति का अंधाधुंध दोहन किया जा रहा है। वनों की कटाई, नदियों पर बाँध निर्माण, औद्योगिक कचरे और मलमूत्र को जलधाराओं में प्रवाहित करना, अवैध बालू उत्खनन तथा डायनामाइट से पहाड़ों को तोड़ना जैसी गतिविधियाँ विकास के नाम पर विनाश को जन्म दे रही हैं। जिस प्रकृति को कभी माँ, देवी, सखी और कल्याणकारिणी मानकर पूजनीय समझा जाता था, आज वही शोषण और उपेक्षा का शिकार है। यह पर्यावरणीय संकट साहित्य में भी स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होता है। नवीन जोशी कृत दावानल, रमेश दवे कृ त 'हरा आकाश', रत्नेश्वर कृत 'एक लड़की पानी पानी' तथा एस. आर. हरनोट के 'नदी रंग जैसी लड़की' में प्रदूषण और पर्यावरणीय असंतुलन के दुष्परिणामों पर गंभीर चिंतन व्यक्त हुआ है। इन रचनाओं में प्रकृति संरक्षण और प्रदूषण मुक्ति के उपायों की भी सार्थक अभिव्यक्ति मिलती है।

रमेश दवे ने 'हरा आकाश' उपन्यास में लिखा है, ''मनुष्य का मनुष्य के प्रति फर्ज ही फर्ज नहीं होता, मनुष्य को जो हवा जिन्दा रखती है, उस हवा को जिन्दा और शुद्ध रखना भी फर्ज है। पानी, जिसे मनुष्य जीवन कहता है, उस जीवन की रक्षा के लिए पानी की रक्षा भी फर्ज है।''[9]

नवीन जोशी, का 'दावानल' चिपको आन्दोलन पर आधारित महत्त्वपूर्ण उपन्यास है जिसमें शुद्ध हवा, शुद्ध जल के लिए वृक्षों को बचाने का अभियान शुरू होता है जिसका प्रमुख नारा है– क्या है जंगल के उपकार, मिट्टी–पानी और बयार। उत्तराखण्ड के चमोली जिले के नर–नारी से लेकर बड़े–बूढ़े तक सब वृक्षों को बचाने का पुरजोर कोशिश करते हैं। वे कहते हैं– 'पेड़ आदमी के लिए है, आदमी पेड़ के लिए नहीं। जंगल बचाओ क्योंकि आदमी को बचाना है।''[10] उत्तराखण्ड के ग्रामीणों का संघर्ष दर्शाता है कि पर्यावरणीय संतुलन बनाए बिना विकास संभव नहीं।

'नदी रंग जैसी लड़की' उपन्यास में जल, नदी, वृक्ष, आदि के निरन्तर दोहन से उत्पन्न होने वाली समस्या का चित्रण किया गया है, ''जंगल कटाई से जो हरित पट्टी है, जलस्रोत है, वे ही नष्ट नहीं हो रहे हैं, बल्कि तापमान निरन्तर बढ़ रहा है, ग्लेशियर पिघल रहे हैं और बर्फबारी बिल्कुल भी नहीं हो रही। हमारे गाँव और शहर अभी से पानी के लिए तरसने लगे हैं।''[11] हिन्दी उपन्यासकारों ने प्रकृति को केवल सौंदर्य–वर्णन तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक चेतना से जोड़ा है। समकालीन उपन्यासों में यह दृष्टि परिवर्तित होकर चेतावनी के स्वर में प्रकट होती है।

इस प्रकार हिन्दी उपन्यासों में जल, वायु, मृदा और वृक्ष जैसे प्राकृतिक उपादानों को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अनेक रचनाओं में प्रकृति को केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि जीवनदायिनी शक्ति और सांस्कृ तिक आस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'मैला आँचल' और 'बाबा बटेसरनाथ' जैसे उपन्यासों में नदी और वृक्षों को पूजनीय माना गया है, जैसा कि वैदिक परंपरा में प्रकृति के प्रति श्रद्धा का भाव था। ये उपन्यास जंगलो में रहने वाले लोगो की जीवन संस्कृति और पर्यारण की समस्याओं से रू–ब–रू कराते है। वर्तमान राजनीतिक व्यस्था में अर्थव्यस्था का काफी महत्त्व है। आर्थिक प्रगति के नाम पर तेजी से जंगलो में घुसती बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने अत्यंत तबाही पैदा की है। यह तबाही अब विध्वंश बन गयी है। जिसका प्रतिउत्तर विकास परियोजनाओं का विरोध, हिंसक प्रदर्शन और नक्सलवाद के रूप में देखने को मिलता है। झारखण्ड, छत्तीसगढ, उड़ीसा में खानन कंपनियों द्वारा मूल निवासियों के साथ व्यवहार और उनका विरोध इसके उदाहरण है।

1985 में भारत ने नीतिगत प्रक्रिया के तहत पर्यावरण संरक्षण से जुड़े पहलुओं को शामिल कर लिया था। वन संरक्षण के लिए पी.पी.पी.; सार्वजनिक–निजी–भागीदारीद्ध मॉडल पर ध्यान दिया गया था। सार्वजनिक निजी भागीदारी के तहत पौधों को लगाना तथा पार्कों का निर्माण जैसे प्रयासों को प्रमुखता दी गयी। उपग्रहों की तैनाती, एकीकृत अपशिष्ट प्रबंधन प्रणाली लैब, गहरे घने जंगलो की निगरानी के लिए ड्रोन की तैनाती, कैमरे आदि के उपयोग से पर्यावरण प्रबंधन में प्रोद्योगिकी के प्रयोगों द्वारा सटीक जानकारी हासिल करने में सफलता मिली है। प्लास्टिक प्रदूषकों पर प्रतिबंध, एकल प्रयोग प्लास्टिक पर पूर्णतः प्रतिबंध, घरेलू ईंधन के लिए उज्जवला योजना के माध्यम से एल.पी.जी. सिलैंडरों की आपूर्ति, अपशिष्ट और बायोमेडीकल बेस्ट के प्रबंधन के लिए नीति, चिंतन शिविर, स्कूल नर्सरी कार्यक्रम जलवायु परिवर्तन विशेष एक्सप्रेस जैसी पहले प्रदूषण कम करने की दिशा में सरकार के प्रयास सराहनीय है । इस दिशा में हमें विकास को पर्यावरण का विरोधी मानने वाली अवधारणा से उभरते हुए सकारात्मक रूप से प्रयास करने की आवश्यकता है।

हिन्दी उपन्यासों में पर्यावरणीय चेतना की वर्तमान में प्रासंगिकता

मेरे विचार में हिन्दी उपन्यासों में पर्यावरणीय चेतना न केवल प्रकृति के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, बल्कि यह मनुष्य को अपनी जिम्मेदारियों का बोध भी कराती है। वर्तमान समय में जलवायु परिर्वतन, प्रदूषण, वनों की कटाई और प्राकृतिक संसाधनों के अधांधुंध दोहन ने मानव अस्तित्व को ही संकट में डाल दिया है। ऐसे समय में साहित्य, विशेष रूप से हिन्दी उपन्यास, प्रर्यावरणीय चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

हिन्दी उपन्यासों में पर्यावरणीय चेतना का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि यह मानव–प्रकृति संबंधों का पुनर्मल्यांकन करती है। हमें यह भी सिखाती है कि प्रकति केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवन का आधार है। यदि हम प्रकृति का सम्मान नहीं करेगें तो, हमारा अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। इसके अतिरिक्त, हिन्दी उपन्यासों में पर्यावरणीय चेतना न्याय से भी जुड़ी हुई है। गरीब हाशिए के लोग पर्यावरणीय संकट का सबसे अधिक सामना करते हैं। इस दृष्टि से हिन्दी उपन्यास हमें यह समझने में मदद करते हैं कि पर्यावरणीय संरक्षण केवल प्रकृति की रक्षा नहीं, बल्कि सामाजिक समानता की दिशा में एक कदम है। हिन्दी उपन्यास हमें सिखाते हैं, कि विकास और पर्यावरण के बीच संतुलन बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। अतः मैं कहना चाहूँगी कि हिन्दी उपन्यासों में पर्यावरणीय चेतना आज के समय में प्रासंगिक है। यह हमें पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति जागरूक करने के साथ–साथ एक जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए भी प्रेरित करतें है।

निष्कर्ष

हिन्दी उपन्यासों में पर्यावरणीय चेतना का स्वर निरंतर विकसित और व्यापक होता हुआ दिखाई देता है। प्रारंभिक रचनाओं में प्रकृति को जीवन का अविभाज्य अंग, आस्था का केंद्र और सांस्कृतिक आधार के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, जबकि समकालीन उपन्यासों में पर्यावरणीय संकट, प्रदूषण, संसाधनों के दोहन और विकास की अंधी दौड़ से उत्पन्न समस्याओं को गंभीरता से उठाया गया है। उपन्यासों में पर्यावरणीय चेतना बहुआयामी है। एक ओर प्रकृति के प्रति श्रद्धा, प्रेम और सह–अस्तित्व की भावना है, तो दूसरी ओर आधुनिक विकास मॉडल की आलोचना और पर्यावरण संरक्षण का आह्वान भी है। लेखक यह स्पष्ट करते हैं कि जल, वायु, मृदा और वृक्षों के बिना मानव जीवन असंभव है। अतः प्रकृति का संरक्षण केवल सामाजिक दायित्व नहीं, बल्कि अस्तित्व की शर्त है। हिन्दी उपन्यासों में पर्यावरणीय चेतना केवल साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक आंदोलन का रूप ले चुकी है। यह साहित्य समाज को सचेत करता है कि यदि प्रकृति बचेगी, तभी मानव सभ्यता सुरक्षित रह सकेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Douglus and Holland, fundamentals of Educational Psychology, mac millan 1938. P.45
2. P.Gisbert, Fundamentals of sociology, orient Longmans,1957. P.55
3. राहुल सांकृत्यायन, (अनुदित) विनय पिटक दिल्ली,गौतम बुक सेंटर, पृ. 45
4. भारत वन रिपोर्ट 2019, जलवायु एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार
5. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव का देवता, 2009 ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली पृ. 33
6. मांजी महुआ, मरांग गोड़ा नीलकंठ हुआ, 2012 राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
7. नागार्जुन, 'बाबा बटेसरनाथ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 8
8. फणीश्वरनाथ रेणु, 'मैला आँचल', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 13
9. रमेश दवे, 'हरा आकाश', सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, 2016, पृ. 28.
10. नवीन जोशी, 'दावानल', वहीं, 2008, पृ. 201
11.एस. आर. हरनोट ,'नदी रंग जैसी लड़की', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पृ. 130–131